



किसान जागरुकता कार्यक्रम मौसम आधारित कृषि सेवा



केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

एवं

भारत मौसम विज्ञान विभाग, पुणे

2010



प्रकाशक

डॉ. एम.एम. रॉय

निदेशक, काजरी

संपादन

डॉ. ए.एस. राव

डॉ. सुरेन्द्र पूनियां

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

फरवरी, 2010

प्रस्तावना

मरुस्थल की विशेष समस्याएँ एवं विशेषताएँ रही है। इसे उच्च प्रबन्धकीय स्थितियों द्वारा सुधारा व विकसित किया जा सकता है। रेगिस्तानी परिस्थितियों में सुधार हेतु प्रथम आवश्यकता अनियोजित संसाधन विदोहन को नियोजित करना है। परिस्थितिकी विसंगतियां यह इंगित करती है कि संसाधनों के विदोहन में अत्यन्त जागरुकता की आवश्यकता है।

उन्नत तकनीकों को अपनाते समय यहाँ की परिस्थितियों व पारम्परिक क्रियाओं को भी ध्यान में रखना होगा। मरुस्थल के आर्थिक रूप से पिछड़े किसान समय समय पर परिक्षित तकनीकियों को ही अपना सकते है। काजरी पिछले 50 वर्षों से इसी प्रकार की तकनीकें विकसित करने हेतु संघर्षरत है जो आवश्यकता एवं कीमत आधारित हो और जिससे मरु भूमि के किसानों का आर्थिक स्तर उच्च हो व जिन्हें वे आसानी से अपना सकें। अनुसंधान का लाभ पूरी तरह किसानों को पहुँचें एवं किसानों के जीवन स्तर में सुधार हो यह काजरी का लक्ष्य है। इसी अनुरूप हम समय समय पर विभिन्न प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं में लेख द्वारा आप को अवगत करवा रहें है तथा प्रशिक्षण, प्रसार सामग्री, किसान मेलों का आयोजन करते रहें। इसी कड़ी में 'किसान जागरुकता कार्यक्रम मौसम आधारित कृषि सेवा' नामक यह प्रकाशन आपके समक्ष प्रस्तुत है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि यह प्रकाशन कृषि प्रसार-प्रचार अधिकारियों, किसानों एवं प्रशिक्षणकर्ताओ हेतु अत्यन्त उपयोगी सिद्धहोगा।

काजरी किसानों की सेवा हेतु सदैव तत्पर रही है। किसी भी प्रकार की जानकारी हेतु आप हमसे संपर्क कर सकते है। काजरी में एटिक व कृषि विज्ञान केन्द्र किसानों को सलाह, प्रशिक्षण एवं उपयोगी सामग्री उपलब्ध करवाने हेतु कार्यरत है।

हमें आशा है कि इस प्रकाशन से किसानों को मौसम आधारित कृषि प्रबंध में अधिक लाभ होगा। आइये हम मिलकर मरुधरा को खुशहाल बनायें।

डॉ. एम. एम. रॉय
निदेशक

मानसून एवं वर्षा पूर्वानुमान की उपयोगिता

डॉ. ए.एस. राव, डॉ. सुरेन्द्र पूनियां, आर.एस. पुरोहित, आर.एस. मेड़तिया, एम.डी. शर्मा,
लक्ष्मी नारायण, भागीरथ सिंह एवं सीमा चौधरी

मानसून आगमन : वर्षा का समय मुख्यतः जून से सितम्बर तक का होता है। इस वर्षा की अवधि में दक्षिण से उत्तर एवं पूर्व से पश्चिम की ओर चलने पर कमी दर्ज की जाती है। पश्चिमी राजस्थान के थार मरुस्थल क्षेत्र के बाड़मेर एवं जैसलमेर जिलों में यह अवधि मुश्किल से दो महिने की होती है। मानसून काल में पूरे भारत में औसत वर्षा 880 मि.मी ही होती है जबकि पश्चिमी राजस्थान में कुल औसत वर्षा सिर्फ 280 मि.मी. ही होती है। अतः इससे यह ज्ञान होता है कि मानसूनी वर्षा का वितरण अन्य कारणों से बराबर नहीं होता है। मानसून का आगमन एवं वापसी दोनों धीरे-धीरे होता है। पूरे प्रदेश में मानसून के फैलने में लगभग डेढ़ महिने का समय लग जाता है। राजस्थान के थार मरुस्थल में 15 जुलाई तक पहुँचता है तथा वहां से 15 सितम्बर से पहले ही लौटना प्रारम्भ कर देता है।

दक्षिण-पश्चिमी मानसून दो शाखाओं में बंटकर हमारे देश में प्रवेश करता है। एक बंगाल की खाड़ी तथा दूसरी अरब सागर की शाखा होती है। दोनों स्थानों से मानसून उत्तर दिशा में बढ़ता है। ये शाखाएं जहां पर सक्रिय होती हैं वहां पर अच्छी वर्षा होती है। मानसून को सक्रिय बने रहने के लिये बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर से निम्न वायुदाब अवदाब या गहरा अवदाब का बनना तथा इसका अपने देश की ओर आना अत्यन्त आवश्यक होता है। कभी कभी ये दोनों शाखाएं सक्रिय होकर किसी स्थान विशेष के ऊपर जब मिलती हैं तो उस स्थान या क्षेत्र के उपर बहुत भारी वर्षा दर्ज की जाती है तथा ऐसी वर्षा 3 से 5 दिन तक चलती रहती है जिससे कि बरसात के पानी से बाढ़ का दृश्य उत्पन्न हो जाता है।

मौसम पूर्वानुमान : मौसम की परिस्थितियों को कुछ समय पहले बताना ही मौसम पूर्वानुमान कहलाता है। मौसम या वर्षा का पूर्वानुमान मुख्यतः तीन प्रकार का होता है।

कम अवधि का पूर्वानुमान (यानि 24 से 48 घण्टे तक के लिये) : छोटी अवधि का पूर्वानुमान ज्यादातर खेलकूद, पर्यटन, सड़क एवं जहाजरानी परिवहन सेवाओं के लिये महत्वपूर्ण होता है। तूफानी मौसम से जान एवं माल का नुकसान को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसके लिए भारत सरकार मौसम के आंकड़े इकट्ठा करने हेतु देश में मौसम वैधशालाओं का जाल सा बिछा दिया है। इसके अतिरिक्त मौसम उपग्रह भी पृथ्वी की कक्षा में भेजा जाता है जो स्वचालित यन्त्रों की सहायता से मौसम के मानचित्र तैयार करके पृथ्वी पर जानकारी वैधशालाओं को भेजते रहते हैं इसके आधार पर मौसम का पूर्वानुमान लगाना सरल हो जाता है।

मध्यम अवधि पूर्वानुमान (3 से 10 दिन तक के लिये) : मध्यम अवधि के मौसम पूर्वानुमान की मदद से कृषि से जुड़े अनेक कार्यों के सुचारू तरीके से करने में मदद मिलती है। संकट की स्थिति से निपटने एवं जल प्रबंधन, सिंचाई एवं बाढ़ की चेतावनी दी जा सकती है। मौसम विज्ञान विभाग द्वारा 1945 से नियमित रूप से मौसम की भविष्यवाणी की जाती है। प्रादेशिक एवं क्षेत्रिय स्तर पर भी किसानों के लिये मौसम बुलेटिन प्रतिदिन जारी किया जाता है। जिसे आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से प्रसारित एवं प्रचारित किया जाता है। मौसम बुलेटिनों में प्रत्येक जिलों में उगाई जाने वाली फसलों के मुताबिक कृषि सुझाव की जरूरत एवं इसकी भविष्यवाणी दर्शायी जाती है।

सन् 1988 से राष्ट्रीय मध्यमावधि मौसम पूर्वानुमान केन्द्र नई दिल्ली से मध्यम अवधि का पूर्वानुमान देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिये हफ्ते में दो दिन जारी किया जाता है। इसके द्वारा जोधपुर एवं आसपास के क्षेत्रों के लिये मौसम की जानकारी काजरी, जोधपुर को की जाती है। इसी पूर्वानुमान के आधार पर काजरी के मौसम विज्ञान इकाई द्वारा किसानों के लिये कृषि मौसम सुझाव बुलेटिन जारी की जाती है जो कि जोधपुर से प्रकाशित होने वाले सभी समाचार

पत्रों में बुधवार एवं शनिवार को पढ़ा जा सकता है। इन बुलेटिन को पढ़कर क्षेत्र के किसान भाई काफी लाभ उठा सकते हैं। मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान की मदद से कृषि में होने वाले नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। जैसे बरसात पूर्वानुमान होने पर किसान भाई सिंचाई बन्द कर सकते हैं। जिससे ट्यूबवेल की श्रम एवं पानी की बचत होगी। पाला की रोकथाम, कीटनाशकों का छिड़काव, खाद एवं पानी देने में, पशुओं को गर्मी सर्दी से बचाव आदि में पूर्वानुमान से मदद मिलती है। उर्वरक देते ही अगर भारी वर्षा होती है तो वह बहकर या बरसात के पानी के साथ नीचे भूमि में गहराई में चले जाते हैं व पेड़ पौधों को जड़ों को नहीं मिल पाते। इन नुकसान को भी हम मौसम पूर्वानुमान के अनुसार कम कर सकते हैं।

लम्बी अवधि पूर्वानुमान (1 महीना एवं ऋतुकाल के लिये) : इस पूर्वानुमान से प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखे बाढ़ से निपटने हेतु अग्रिम योजनाबद्ध तैयारी करने में मदद मिलती है इसके आधार पर किसी स्थान विशेष के लिये फसलों का चुनाव भी कर सकते हैं।

भारत मौसम विज्ञान विभाग, लम्बी अवधि का पूर्वानुमान मई के अन्तिम सप्ताह में आने वाले मानसून के लिये प्रतिवर्ष जारी करता है। भारत में लम्बी अवधि की भविष्यवाणी 16 तथ्यों पर निर्भर करती है जो कि विश्व के विभिन्न हिस्सों से ये आंकड़े तैयार किये जाते हैं। इन तथ्यों में कुछ तथ्य जैसे अलनिनों की विगत एवं वर्तमान वर्ष में, दशा, हिमालय पर्वत पर बर्फीले क्षेत्र का क्षेत्रफल, उत्तर एवं पश्चिम भारत में मार्च एवं मई के महिनों का न्यूनतम तापमान, यूरेशिया में दिसम्बर माह में बर्फीले क्षेत्र का क्षेत्रफल इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें मानसूनी वर्षा का अच्छा सम्बन्ध देखा गया है।

मौसम विभाग ने मानसून काल 2009 में पूरे देश में सामान्य से कम (93%) वर्षा होने की सम्भावना व्यक्त की थी। सामान्य वर्षा का अर्थ यह होता है कि देश में जितनी वर्षा होती है उससे 10 प्रतिशत अधिक या कम वर्षा को सामान्य वर्षा कहा जाता है। वर्ष 2009 में मानसून केरला में एक हफ्ता पहले ही अर्थात् 23 मई 2009 को आ गया था तथा देश के सभी स्थानों पर सामान्य तिथि से 9 दिन पहले पहुंचा। वर्ष 2009 में सम्पूर्ण राजस्थान में औसत वर्षा 378.8 मि.मी. हुई जो सामान्य वर्षा 539.80 मि.मी. से कम हुई। वर्ष 2009 में मानसून अवधि में पश्चिमी राजस्थान में सामान्य से -50 प्रतिशत कम वर्षा रिकार्ड की गई। जोधपुर जिले में सामान्य से -57 प्रतिशत कम, नागौर में -70 प्रतिशत कम, जालोर में -49 प्रतिशत कम, पाली में -60 प्रतिशत कम, चुरू में -59 प्रतिशत कम वर्षा दर्ज की गई है।

वर्तमान में केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) के सतत् मौसम विज्ञान इकाई द्वारा सप्ताह में दो बार क्रमशः मंगलवार एवं शुक्रवार को भारत मौसम विज्ञान विभाग, नई दिल्ली से प्राप्त मौसमीय आंकड़ों के आधार पर पांच जिलों के लिए जोधपुर, बाड़मेर, चुरू, जालोर एवं पाली के किसानों के लिए मध्यम अवधि के पूर्वानुमान की मौसम सम्बन्धि जानकारी, काजरी जोधपुर द्वारा दी जाती है। मौसम पूर्वानुमान में वर्षा का पूर्वानुमान सबसे महत्वपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण विषय है क्योंकि भारत में कृषि कार्य वर्षा पर निर्भर करता है। इस प्रकार मौसम पूर्वानुमान सैद्धान्तिक होने के साथ-साथ व्यवहारिक भी है। इसका उपयोग कृषि के अलावा उद्योग धन्धे, नगर योजनाओं, भवन निर्माण, परिवहन, सैन्य विज्ञान, खेलकूद, पर्यटन, पर्वतारोहण, वानिकी, मानवीय सुख सुविधा, बीमारियों की रोकथाम आदि में भी किया जाने लगा है।

इसी कड़ी में वर्तमान में काजरी, जोधपुर में कृषि मंत्रालय, भारत सरकार एवं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) दिल्ली ने संयुक्त रूप से मिलकर 'एक्सटेंडेड रेंज वैदर फॉरकास्टिंग सिस्टम' नामक परियोजना का प्रायोगिक तौर पर जोधपुर में प्रारम्भ किया है। इस परियोजना की सहायता से हम एक महीने पहले मौसम में आ रहे बदलावों का पूर्वानुमान लगाकर बाढ़, अकाल और चक्रवात जैसी विपदाओं से होने वाली जान-माल की हानि से बचा जा सकेगा।

अतः इस परियोजना की सहायता से एक महीने पूर्व मौसम का पूर्वानुमान तथा भारतीय मौसम विभाग से प्राप्त मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान की सहायता से किसान भाईयों के कृषि में होने वाले नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। किसान भाई मौसम आधारित जानकारी प्राप्त करने के लिए काजरी में स्थित सतत् मौसम विज्ञान इकाई के दूरभाष 0291-2786089 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

पश्चिमी राजस्थान में टिकाऊ खेती के लिए जलवायु के अनुरूप फसल विविधिकरण एवं मौसम पूर्वानुमान के अनुसार फसल प्रबन्धन

डॉ. टी.के. भाटी एवं भागीरथ सिंह

मानव जीवन में कृषि का विशेष महत्व है। कृषि पूर्ण रूप से जलवायु पर आधारित है। जलवायु के विभिन्न घटक जैसे तापमान, वर्षा, आर्द्रता, पाला, कोहरा, वायु की गति व दिशा आदि कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

पृथ्वी के चारों ओर 8 से 16 किमी की परिधि में जो आणविक व गैसीय भार पाया जाता है, वही पृथ्वी की जलवायु को नियन्त्रित करता है। वायु प्रवाह, वायु गति व दिशा, वायुमण्डलीय विक्षोभ, संवहन धाराएँ, चक्रवात, प्रति चक्रवात, वायु राशियाँ, तूफान आदि सभी वायुमण्डलीय क्रिया-कलाप इसी परिधि से सम्बन्धित है।

राजस्थान के इस पश्चिमी भाग में वर्षा ऋतु में बाजरा व दलहन उत्पादन लिया जाता है। इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन कम व अनिश्चित होता है। जिसके मुख्य कारण वर्षा की कमी, अनियमितता, सिंचाई के साधनों का अभाव, भूतल में जल की कमी व गुणवत्ता का अभाव, रेतिली व कम उर्वरक मिट्टी, तापमान का अधिक व आर्द्रता का कम होना आदि है।

उचित कृषि अथवा फसल प्रबन्ध के द्वारा इस कम वर्षा व सूखा प्रभावित क्षेत्रों में भी कृषि का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है एवं टिकाऊ खेती सम्भव है। वर्षा निर्भर कृषि क्षेत्रों के अधिकांश कृषक अपने परिवार के लोगों और अपने पशुओं के लिए आवश्यक अनाज एवं चारे के उत्पादन को प्राथमिकता देते हैं और उनकी आवश्यकताओं को जल उपलब्धता, बाढ़काल व अकाल काल, विक्रय सुलभता, आर्थिक सरकारी नीतियाँ को आधारमान कर फसलों, फसल चक्र व उनकी किस्मों के चुनाव द्वारा ही सही उत्पादकता की आशा की जा सकती है। सतत् कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक है कि उपज बढ़ाने की आसान तकनीकों का विकास किया जाये तथा ये अधिकांश कृषकों द्वारा अपनाई जा सकें। उन वैकल्पिक फसल उत्पादन तकनीकों का भी विकास होना आवश्यक है जिनमें फसल, मौसम के प्रति वर्षा की कमी व अन्य अनियमितताओं के दुष्प्रभाव को सहते हुए भी भूमि एवं जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करने में सक्षम हो।

फसल उत्पादन के लिए मौसम आधारित निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :-

1. प्रभावी फसल प्रणाली : इस क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा, वितरण, काल एवं प्रचण्डता, जल उपलब्धता फसल प्रणाली निर्धारण करती है और इस क्षेत्र के कृषकों का ध्येय कम से कम जोखिम के साथ लगातार स्थायी उत्पादन करना होता है। साधारणतः फसलों को प्रकाश अनुग्रही, कम फसल-काल वाली तथा सूखा सहिष्णु (को सहन करने) होना चाहिए।

एकल फसल प्रबन्ध : इस क्षेत्र की अनिश्चित वर्षा व शुष्क तथा अंसिचित क्षेत्रों में इस उत्पादन प्रणाली का प्रचलन काफी प्राचीन काल से है, मानसून काल (जून से सितम्बर) में एकल फसल ही ली जाती है जिसका प्रभावी काल 12 से 16 सप्ताह होता है। मानसून की अनिश्चित वर्षा वाले व शुष्क तथा अंसिचित क्षेत्रों में एकल फसल प्रबन्ध प्रणाली में मिश्रित फसले अनेक विधियों द्वारा ली जा सकती है। जिनको कम अन्तरण पर बोई जाने वाली (जिनकी बुआई एवं कटाई का समय लगभग समान हो) अधिक अन्तरण पर बोई जाने वाली (जिनकी बुआई समय एक परन्तु कटाई समय अलग होता है), पंक्तियों में उगाना, पट्टियों में उगाना, फसले को भिन्न भूमि के टुकड़ों पर बुवाई करना एक फसल के चारों ओर दूसरी फसल लगाना मेड़ो पर फसल की बुवाई करना। इस क्षेत्र में वर्षाकाल व वर्षा की मात्रा के अनुसार मुख्यतः बाजरा, ग्वार, मोठ, मुंग, चंवला, तिल आदि लिये जाते हैं जहां इस क्षेत्र में भूजल का सही सिंचाई वाला पानी (जल) मिल जाता है। वहां पर रबी में सरसों, गेहूँ, जौ, जीरा व चना आदि बोया जाता है।

2. फसल काल : खरीफ की फसलों के लिये साधारणतया 75 से 120 दिन का फसल काल अच्छे उत्पादन के लिए आवश्यक है किन्तु पश्चिमी राजस्थान के कई क्षेत्रों में यह इससे भी कम है। साथ ही वर्षा का समय पर न होना, बाद में शुरू अथवा जल्दी खत्म हो जाना फसल के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालता है। इसके लिए आवश्यक है कि विभिन्न फसलों एवं उनकी किस्मों का चुनाव यहां की मौसमीय परिस्थितियों के अनुसार हो।

3. फसल का चुनाव : फसल का चुनाव, फसल की किस्म व किस्म की पकने की अवधि, वर्षा की मात्रा एवं उसके वार्षिक स्थानीय अथवा ऋतु-कालीन वितरण पर निर्भर करता है साथ ही भूमि एवं जलवायु, फसलों का वर्गीकरण आदि पर निर्भर करता है।

4. फसल चक्र एवं समयावर्तन : भूमि की किस्म, जलवायु, मृदा उर्वरता, जल एवं खाद उपलब्धता, कुल उत्पादन, आर्थिक दृष्टिकोण, कृषक की आवश्यकताएं आदि अनेक कारण फसल चक्र चुनाव को प्रभावित करते हैं। भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखने के लिए कृषक पड़त छोड़ते हैं। फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश करके, कृषि वानिकी के विभिन्न प्रकार अपना कर भी भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखा जा सकता है तथा कृषि उत्पादन में विविधता लाई जा सकती है।

5. बुवाई का समय : इस क्षेत्र में बुआई के समय फसल की सफलता व असफलता एवं उपज पर मुख्य प्रभाव फसल चक्र फसल एवं उसकी किस्म, खेत की तैयारी, किसान के पास उपलब्ध साधन आदि के कारक से पड़ता है। यह सब मौसम से अधिक प्रभावित होते हैं। जिसमें वर्षा व तापमान मुख्य घटक है। बुआई के लिए न्यूनतम, अधिकतम एवं इष्टतम तापमान होते हैं। इष्टतम (Optimum) ताप पर फसल का अंकुरण सर्वाधिक होता है। बुवाई के समय बुवाई की गहराई पर उपलब्ध जल या नमी का भी ध्यान रखना होता है।

6. भूमि की जुताई : खेत तैयारी जैसे काश्तकारी, लोटनी, हरोइंग, गहरी जुताई व निराई इत्यादि क्रियायें मौसम के अनुसार जैसे वर्षा के आगमन का अनुमान, वायु की दिशा व गति के अनुसार व तापमान के अनुसार किया जाना चाहिए। फसलों के कीट एवम् व्याधि नियन्त्रण में भी सहायता मिलती है।

7. वर्षा ऋतु के मध्य की दीर्घ शुष्क फसल को हानि पहुंचाती है। इसलिए उनके काल व हो सकने की सम्भावना का पूर्वानुमान मौसम पूर्वानुमान की वैकल्पिक युक्तियों के निर्धारण में सहयोगी हो सकता है। इसी के आधार पर जल संरक्षण, शुष्कता सह सकने वाली फसलों या किस्मों के उपयोग का निश्चय किया जा सकता है तथा जरूरत पड़ने पर सिंचाई की व्यवस्था की जा सकती है।

8. मानसून का आगमन, वितरण तथा काल : पूर्वानुमान के आधार पर वर्षा का आगमन, उसकी मात्रा, वितरण व काल का सही सही जानकारी फसल व उसकी किस्म की अवधि का चुनाव तय करती है। इससे किसान खेत तैयार करना, बीज की व्यवस्था करना, नत्रजन का किस समय छिड़काव करना, फसल में निराई-गुड़ाई कब करना, कतारों के मध्य वर्षा जल का संचय व निकास की व्यवस्था करना, फसल के पकने की स्थिति में तापमान व वर्षा के अनुरूप कटाई करके सही व सुरक्षित स्थान पर रखना।

इस क्षेत्र के लिये अच्छी विभिन्न किस्में

1. बाजरा – सी.जेड.पी. 9802, एच.एच.बी. 67, एच.एच.बी. 94, आई.सी.एम.एच. 356, आर.एच.बी. 121
2. ग्वार – मरू ग्वार, आर.जी.सी. 1002, आर.जी.सी. 936, आर.जी.सी. 1003, आर.जी.एम. 112
3. मोठ – मरू मोठ, काचरी मोठ-1, काचरी मोठ-2, काचरी मोठ-3, आर.एम.ओ. 435, आर.एम.ओ. 40, आर.एम.ओ. 257
4. मूंग – आर.एम.जी. 62, के-851
5. कुल्थी – मरू कुल्थी-1

मौसम के बदलाव से जनित फसलों के रोग

सतीश लोढ़ा

शुष्क क्षेत्र भारत के कुल क्षेत्रफल के करीब 10 प्रतिशत भाग में फैला हुआ है। कम व अनियमित वर्षा के कारण इसके अधिकतर भाग में सूखा रोधी फसलों जैसे बाजरा, ग्वार, मूंग, मोट, तिल आदि की ही खेती होती है। गत दो दशकों में जबसे इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के द्वारा हिमालय का पानी थार रेगिस्तान में पहुंचा है तब से कई और सिंचित फसलों के क्षेत्रफल में उत्तरोत्तर बढ़ोतरी हुई है। जिससे जीरा, ईसबगोल, सरसों, गेहूं आदि की बुवाई भी काफी बड़े क्षेत्र में की जा रही है। इन फसलों को कीट व बिमारियों से काफी नुकसान होता है। इनमें कई बिमारियां मौसम के बदलाव से उत्पन्न होती हैं व अनुकूल मौसम में ये और तेजी से बढ़ती हैं। यदि हम मौसम के बारे में वैज्ञानिक तरीके से कुछ भविष्यवाणी कर सकें व उसी हिसाब से किसानों को आने वाली बिमारियों की आशंकाओं से अवगत करा सकें। इससे किसान अपने खेत में लगाई गई फसल पर रोग का पहले से ही उपचार कर सकेंगे। प्रमुख फसलों के मौसम जनित रोग इस प्रकार हैं।

जीरा

जीरा हमारे प्रदेश की सर्दियों में ली जाने वाली एक प्रमुख फसल है। इसके बीजों का हम 70 देशों में निर्यात करते हैं। यह एक नगदी फसल है जिससे किसान एक हैक्टेयर में 30-35 हजार तक की आमदनी कर सकते हैं। इस रोग में दो मौसम जनित बिमारियों से जारी नुकसान होता है।

झुलसा : यह रोग आर्द्र मौसम, बादलों से आच्छादित आकाश, 23-28 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान के समय पौधों में फैलता है। छुटपुट वर्षा हो अथवा आकाश में बादल बने रहे तो यह रोग 2-3 दिन में ही उग्र रूप धारण कर लेता है। यह रोग फसल की दो माह अवस्था में यानि फूल आने के समय दिखाई देता है। इसकी शुरुआत छोटे-छोटे धब्बों के रूप में पत्तियों के किनारों से होती है। धीरे-धीरे ये धब्बे बड़े होकर बैंगनी रंग के हो जाते हैं। रोग ग्रसित पौधों में बीज बिल्कुल भी नहीं बनते हैं।

रोकथाम के उपाय : खेत में पिछले साल का कचरा नहीं छोड़ना चाहिये। फूल आने के समय चाहे रोग के लक्षण दिखाई दे अथवा नहीं पर एक छिड़काव तो मेन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) या किटाजिन (1 मिली. एक लीटर पानी) नामक फफूंद नाशक का कर ही देना चाहिये। यदि मौसम बादलों वाला हो तो एक छिड़काव दस से पंद्रह दिन के अन्तर पर और कर देना चाहिये। इसके लिये किसानों को जीरे के बोये गये क्षेत्र के अनुसार बुवाई के बाद ही दवा खरीद कर रख लेनी चाहिये।

छाछया : इस बिमारी को अधिकतर फूल आने से बीज बनने के दौरान उग्र अवस्था में देखा, जा सकता है। इस रोग की शुरुआत छोटे छोटे सफेद धब्बों के रूप में निचली पत्तियों से होती है। धीरे-धीरे यह रोग तने, फूल और बीजों पर भी फैल जाता है। गर्म लेकिन नमी वाले मौसम में यह रोग तेजी से फैलता है। मौसम के शुष्क होते ही यह रोग का असर और फैलाव ज्यादा हो जाता है।

रोकथाम : पौधों में इस रोग के लक्षण दिखते ही 25 किग्रा. गन्धक के चूर्ण का प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिये। यदि मौसम अनुकूल बना रहे तो 15 दिन के बाद गन्धक का एक और भुरकाव 12-13 किग्रा. के हिसाब से करना चाहिये।

ग्वार

ग्वार शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में खरीफ के समय ली जाने वाली एक प्रमुख फसल है। जमीन में नत्रजन को स्थिर करने वाली यह फसल भारत में करीब 23 लाख हैक्टेयर में लगाई जाती है, उसमें से राजस्थान का करीब 80 प्रतिशत हिस्सा

हैं। इसके अलावा गुजरात, हरियाणा व पंजाब में भी इसकी खेती की जाती है।, पौराणिक समय से ही ग्वार सब्जी के रूप में व पशुओं के चारे व आहार के रूप में काम में लिया जाता रहा है।

1. शाकाणु झुलसा (बेवटीरीयल ब्लाइट):- यह रोग ग्वार की खेती करने वाले सभी क्षेत्रों में होता है। भारत के अलावा अन्य देशों में भी यह रोग ग्वार पर काफी नुकसान पहुँचाता है। उग्र अवस्था में इस रोग से 45 से 50 प्रतिशत तक उपज कम हो जाती है। यह रोग जेन्थोमोनास एकजोनोपोडीस पेटोवार साईमोप्सिडिस नामक शाकाणु से होता है।

यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। प्रारम्भ में पत्तियों के दोनों तरफ शिराओं के मध्य छोटे बड़े गोल चिपचिपे धब्बे देखे जा सकते हैं, जो अनुकूल वातावरण मिलने पर एक दूसरे में मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं। पत्तियाँ समय से पहले गिर जाती हैं। उग्र अवस्था में तने पर लम्बाकार धारियाँ दिखाई देती हैं। जिससे तना काला पड़ जाता है। पौधे पर फलियाँ कम लगती हैं व इनमें दाने भी कम हो जाते हैं।

यह रोग छुटपुट वर्षा में अधिक आद्रता व तापमान से ज्यादा फैलता है। रोग के जीवाणु बीज के माध्यम से एक से दूसरे वर्ष में प्रसारित होते हैं। एक बार पौधों की पत्तियों पर लगने के बाद वर्षा के छीटों आदि से यह रोग स्वस्थ पौधों में तेजी से फैलता है। पौधों की एक माह की अवस्था सबसे नाजुक होती है।

रोकथाम के उपाय :-

- 1 खेत में रोग रोधी या रोग सहनशील किस्में लगानी चाहिये। आर.जी.सी. 986, एच.एफ.जी. 75, आर.जी.सी. 1002, एच. जी.एस. 0365, आदि प्रमुख रोग रोधी किस्में हैं।
- 2 स्वस्थ बीजों को बोने के काम में लेने चाहिये।
- 3 बीजों को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (0.025 प्र.श.) से उपचारित करके बोना चाहिये। आठ लीटर पानी में 2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन घोल कर बीजों को 2 घंटे तक डुबाकर निकालने के बाद छाया में सुखाकर बोने चाहिये।
- 4 रोग फैलने के लिये अनुकूल मौसम होने पर 10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 100 लीटर पानी (0.01 प्रतिशत) में मिलाकर छिड़कना चाहिये। उग्र अवस्था हो तो दूसरा छिड़काव 15 रोज के पश्चात करना चाहिये।
- 5 खेत में पिछले वर्ष का कचरा नहीं छोड़ना चाहिये।

बेर

उन्नत किस्मों और खेती के आधुनिक तरीकों के प्रयोग से बेर की खेती बहुत लाभप्रद हो गयी है। परन्तु कीड़ों व बीमारियों के प्रकोप के कारण काफी नुकसान भी होता है।

छछिया (ओईडियम इरीसाईफॉयडीज प्रजाति जिजीफाई)

यह बेर का सबसे प्रमुख रोग है। आज कल इसके प्रकोप से बेर की उपज कई स्थानों पर काफी कम हो गयी है। यह रोग नई पत्तियों की निचली सतह पर सफेद चूर्ण की तरह शुरू होता है जिससे पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं व बाद में गिर जाती हैं। फलों पर इसकी शुरुआत अक्टूबर-नवम्बर में होती है। जब फल पर छोटे-छोटे सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे धीरे-धीरे आकार में बड़े होने लगते हैं व दिसम्बर के लगभग भूरे या गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। रोग ग्रसित फल समय से पूर्व ही जमीन पर गिर जाते हैं अथवा सख्त हो जाते हैं।

नियंत्रण

नियंत्रण का सबसे प्रमुख उपाय रोग रोधी किस्मों को लगाना है। रोग के लक्षण दिखते ही कैराथेन ई.सी. (0.2%) या कैलीक्सीन (0.1%) का छिड़काव 15 दिनों के अन्तर पर करना चाहिए।

पत्ती दाग

बेर की पत्तियों पर अलग-अलग समय कई प्रकार के धब्बे दिखाई देते हैं जिनसे पेड़ पर पत्तियों की मात्रा काफी कम हो जाती है।

(अ) आल्टरनेरिया पर्ण दाग

ये धब्बे पत्तियों पर दिसम्बर-फरवरी के मध्य दिखाई देते हैं। इनकी शुरुआत छोटे-छोटे असमान, गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में होती है। अनुकूल परिस्थितियों में आपस में मिलकर पत्तियों के काफी भाग में छा जाते हैं जिससे पत्ती झुलस जाती है व समय से पहले ही गिर जाती है।

(ब) सर्कोस्पोरा पर्ण दाग

इनकी शुरुआत जनवरी-फरवरी में छोटे-छोटे गोल धब्बों के रूप में होती है, जो किनारों पर लाल होते हैं।

रोग के लक्षण दिखते ही डायथेन जेड 78(0.2%) का छिड़काव 15-20 दिन के अन्तर से दो बार करना चाहिए।

अनार

अनार का स्वाद तथा ताजगी की द्रष्टी से फलों में अपना विशिष्ट स्थान है। इसका वानस्पतिक नाम प्युनिकम ग्रेनेटम है तथा प्युनिकेसी कुल का सदस्य है। यह उष्ण कटिबंधिय फल वृक्ष है। भारत में अनार की बागवानी बहुत ही छोटे पैमाने पर की जाती है। इसे मुख्य रूप से गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व तमिलनाडू राज्यों में उगाया जाता है।

1. फलों का फटना

फलों का फटना मिट्टी में नमी के अचानक उतार चढ़ाव के कारण होता है। जब नमी की कमी होती है, तब फल का छीलका कड़ा पड़ जाता है। बाद में अधिक पानी देने या अधिक वर्षा से फल के अन्दर का हिस्सा एकाएक फूलने लगता है। जिससे फल फटने लगते हैं।

रोकथाम के उपाय

1. इससे बचने के लिए नियमित रूप से फसल काल में यदि हल्की सिंचाई की जावे तो काफी हद तक फलों का फटना रोका जा सकता है।

2. पत्ती तथा फल धब्बा (लीफ स्पॉट)

यह रोग सर्कोस्पोरा तथा गिलियोस्पोरीडीयम नामक कवक प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होता है। जिस वजह से अनार की पत्तियों तथा फलों पर रोग की प्रारम्भिक अवस्था में हल्के भूरे रंग के गोल-गोल चकते बनते हैं। जो रोग की उग्र दशा में गहरे-भूरे रंग में परिवर्तित होकर पत्तियों तथा फलों को घेर लेते हैं। प्रभावित फल सड़ने लगते हैं।

रोकथाम के उपाय

1. बगीचे में गर्मियों में गहरी जुताई करे
2. रोग ग्रसित भागों को काट कर नष्ट करे
3. ताम्रयुक्त फफूँदनाशी केप्टान या मेन्कोजेब 3 ग्राम दवा को प्रति लीटर पानी में घोलकर लक्षण दिखाई देते ही छिड़काव करे। आवश्यकता होने पर पुनः 10-15 दिन बाद दोहरावे।

सरसों

सरसों रबी मौसम की मुख्य तिलहनी फसल है इसकी खेती मुख्य रूप से राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं हरियाणा में की जाती है।

1. काला धब्बा (पत्ति झुलसा) या पर्णचिंति

यह रोग लीफ क्लार्डिट (अल्टरनेरिया) ब्रेसिकी नामक फफूँद से होता है इस रोग के कारण पौधों की निचली पत्तियों पर छोटे-छोटे गहरे भूरे रंग के बिन्दु के रूप में दिखाई देते हैं जो कि तेजी से बढ़कर बड़े धब्बों का रूप ले लेते हैं। यह रोग तीव्र गति से बढ़कर ऊपर की पत्तियों, तने व फलियों को प्रभावित करता है ग्रसित फलियों का बीज सिकुड़ कर छोटा हो जाता है। अधिक उग्रता होने पर सड़ भी जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में पत्तियों के धब्बे आपस में मिलकर अंगमारी के लक्षण प्रकट करते हैं तथा पत्तियाँ मुरझा कर गिरने लगती हैं।

रोकथाम के उपाय

1. स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज काम में लें।
2. रोग प्रभावित फसल के अवक्षेप को नष्ट कर दें तथा खरपतवार की सफाई करें
3. मेन्कोजेब फफूँदनाशक के 0.2 प्रतिशत घोल का रोग दिखते ही 15-15 दिन के अन्तर से छिड़काव करें।

2. श्वेत किट या सफेद रतवा (व्हाइट रस्ट)

यह रोग सभी सरसों उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है, इससे काफी आर्थिक हानि पहुँचती है। पुष्पक्रम तक संक्रमण पहुँच जाने की दशा में मृदुरोमिल आसिता व सफेद रतुवा के मिले जुले प्रभाव से 15-32 प्रतिशत की उपज में नुकसान आंका गया है।

यह रोग सिस्टोपस केण्डीडस नामक फफूँद से फैलता है। प्रभावित पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर 1-2 मि.मी. व्यास के सफेद रंग के छोटे-छोटे फफोले बनते हैं। जो बाद में आपस में मिलकर अनियंत्रित आकार ग्रहण करते हैं। इनके ठिक ऊपर पत्ती की ऊपरी सतह पर भूरे या कथई रंग के धब्बे दिखने लगते हैं। पूर्ण विकसित होने पर फफोले फट जाते हैं। तथा सफेद चूर्ण के रूप में बीजाणु-धानियों के रूप में फैल जाते हैं तथा पत्तियों पर भी फफोले बन जाते हैं। अतिवर्धन व अतिवृद्धि के कारण ग्रसित भाग तना, पुष्पक्रम, पुष्प दण्ड आदि फूल कर मांसल हो जाते हैं। इसके प्रभाव से उत्पन्न आंशिक व पूर्ण नपुंसकता के कारण बीज नहीं बन पाते हैं इस फुली हुई संरचना को बारहसिघा (स्टेगहेड) कहते हैं।

रोकथाम के उपाय

1. समय से बुवाई करें (10-15 अक्टूबर की बीच)
2. स्वस्थ व प्रमाणित बीजों का उपयोग करें।
3. ग्रसित फसल अवशेष को जलाकर या दबाकर नष्ट करें
4. खरपतवारों से फसल को साफ रखें
5. मेटालेक्जिल (एप्रोन 35 एस. डी) से बीजोपचार 2 ग्राम दवा प्रतिकिलोग्राम बीज की दर से उपचारित करने से बीज द्वारा पनपने वाले रोग को रोका जा सकता है।
6. खड़ी फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मेन्कोजेब/रिडोमील एम. जेड 72 डब्लू. जी. फफूँदनाशक का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। अधिकतम तीन छिड़काव ही आर्थिक दृष्टिकोण से उचित होते हैं।
7. फसल की सिंचाई आवश्यकता से अधिक नहीं करें।

3. मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू)

यह रोग पेरेनोस्पोरा पैरासिटीका नामक फफूंद से फैलता है। इस रोग के कारण प्रारम्भ में छोटे-छोटे गोलाकार मटमले भूरे या बैंगनी रंग के धब्बे पत्तियों के निचली सतह पर बनते हैं। जो कि आपस में मिलकर अनियंत्रित आकार ग्रहण करते हैं। परिणाम स्वरूप पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं। तथा नाजुक हो जाने के कारण फट जाती हैं। इन्हीं धब्बों पर मटमेली सफेद या बैंगनी रंग की कवकीय वृद्धि (धूनी हुई रूई के समान) दिखाई देती है जो कि ठण्डे एवं नम वातावरण में अधिक उग्र रूप से प्रकट होती है। सूखे हुए पुष्पांगों पर मृदुरोमिल आसिता व सफेद रतवा के मिश्रित लक्षण भी दिखाई देते हैं।

सफेद रतवा रोग के प्रबंधन समान

4. तना गलन (स्टेम रोट)

यह रोग स्केलेरोटीनिया रोलफंसी नामक फफूंद से फैलता तने पर लम्बे पनिहल धब्बे (वाटर सोकड स्पॉट) बनते हैं जिन पर कवक जाल रूई की तरह फैला रहता है। रोग के कारण जब तना चारों तरफ से कवक जाल से घीर जाता है। तो पौधा मूरझा कर सूखने लगता है। इस रोग के कारण पौधों की वृद्धि रुक जाती है। तथा बौने रहकर जल्दी पकने लगते हैं। रोग के कारण तना फट जाता है। प्रभावित तने की सतह पर भूरी सफेद या काली-काली गोल आकृति की संरचनाएं पाई जाती हैं।

रोकथाम के उपाय

1. गर्मी में गहरी जूताई करें। स्वस्थ बीजों का चयन करें।
2. रोग प्रभावित फसल अवशेषों को नष्ट कर दें
3. फसल चक्र अपनायें
4. कार्बेन्डेजिम (0.1 प्रतिशत) फफूंदनाशक दवा का छिड़काव दो बार फूल आने के समय पर 20-25 दिन के अन्तराल (बुवाई के 50 से 70 वे दिन पर) करने से रोग बचाव किया जा सकता है

मोट

मोट शुष्क क्षेत्रों में खरीफ के मौसम में लगाई जाने वाली एक प्रमुख फसल है जिसकी खेती करीब 15 लाख हेक्टेयर में होती है। इस दलहनी फसल की विशेषता यह है कि इसमें सूखा प्रतिरोधी क्षमता है जिसकी वजह से यह कम वर्षा (150-250 मि० मी०) वाले क्षेत्रों में भी आसानी से अच्छी उपज दे देती है।

1. **पत्ती धब्बा रोग (लीफ स्पॉट):** यह रोग कोलीटोट्राईस ट्रन्केटम नामक फफूंद से होता है। रोग की शुरुआत गोल धब्बों के रूप में पत्तियों पर होती है जो 5-12 मि०मी० तक के आकार के होते हैं। ये धब्बे धीरे धीरे बीच की गोलाई छोड़ देने से एक छेद बना देते हैं। इनके किनारे गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। दुसरा पत्ती धब्बा रोग अल्टरनेरिया अल्टरनेटा नामक फफूंद से होता है। शुरु में छोटे छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देकर ये धीरे धीरे लाल हो जाते हैं व पत्ती का एक बड़ा भाग सूखा देते हैं। तीसरा पत्ती धब्बा रोग मिरोथिशियम रोरीडम नामक फफूंद से होता है जिसके धब्बे गहरे लाल रंग के होते हैं व आकार 4-8 मि०मी० तक होता है।

रोकथाम के उपाय

ये धब्बे मौसम में आद्रता, छुटपुट वर्षा के समय होते हैं। ज्योंही मौसम प्रतिकूल हो जाता है इनकी उग्रता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। परन्तु कभी कभी अगर वर्षा व आद्रता का समय लम्बा चले तब ही खेत में एक छिड़काव मेन्कोजेब या कापर आक्सी क्लोराईड (2 ग्राम प्रति लिटर पानी) नामक फफूंद नाशकों का करना चाहिये। परन्तु मोट की खेती अधिकतर असिंचित क्षेत्रों में ही होती है, जहां छिड़काव के लिये लगने वाले पानी का भी अभाव रहता है अतः छिड़काव का निर्णय स्वविवेक या मौसम की अनुकूलता के हिसाब से ही लेने चाहिये।

फलदार पेड़ एवं मौसम

पी.आर. मेघवाल एवं हरिदयाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा उनका मुख्य व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन है। कृषि में खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, फल व सब्जियां इत्यादि होती है। फलदार पौधों की रोप तैयार करने से लेकर फलो की तुड़ाई, बाजार में भेजना भण्डारण इत्यादि पर मौसम का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। फलदार पौधे चूंकि बहुवर्षीय होते हैं इसलिए इनको मौसम की मार पूरे वर्ष तक झेलनी पड़ती है। मौसम के विभिन्न घटकों जैसे तापमान, औसत वर्षा, वायुदाब, वायुगति, आर्द्रता, वाष्पीकरण, प्रकाश, प्रकाश अवधि, प्रकाश तीव्रता इत्यादि पौधों की विभिन्न क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। मौसम के विभिन्न घटकों का विस्तृत प्रभाव निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

तापमान : मौसम के विभिन्न घटकों में तापमान सबसे महत्वपूर्ण है। यह प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, एन्जाइम क्रियाओं, फलन, फूलन, हार्मोन सन्तुलन, पौधो का विकास, सूक्ष्म जीवों का विकास, कार्बनिक पदार्थों के सड़ने की प्रक्रिया, जड़ों की बढ़त, पानी तथा पौषक तत्वों का अवशोषण, कीड़ों व बीमारीओं का प्रकोप इत्यादि को प्रभावित करता है। तापक्रम में अचानक उतार-चढ़ाव से फलन व फूलन की क्रियाएं प्रभावित होती हैं तथा फल व फूल झड़ जाते हैं। प्रत्येक प्रजाति के बीजों का अंकुरण एक निश्चित तापक्रम पर होता है। इसी प्रकार वानस्पतिक प्रसारण विधियों में कलम पर जड़े भी एक निश्चित तापक्रम होने पर ही बनती हैं। फूल आने, फूलों के खिलने, फल लगने, परागण, फलों का विकास, फल पकना इत्यादि पर तापमान का प्रभाव देखा जा सकता है। तापमान से लिंग अनुपात भी प्रभावित होता है।

प्रकाश : फलदार पौधों में बीजों के अंकुरण से लेकर फलो के पकने तक प्रकाश का मुख्य योगदान होता है। प्रकाश अवधि तथा प्रकाश की तीव्रता दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। प्रकाश संश्लेषण जो कि सभी पौधों की एक मूलभूत आवश्यकता है, प्रकाश की उपस्थिति में ही संभव है। इसी तरह प्रकाश की अवधि पौधो में फूल बनने के लिए अति आवश्यक होती है।

हवा : हवा में उपस्थित विभिन्न गैसों (CO_2 & O_2) की सहायता से ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया होती है जिससे की पौधे पत्तियों की सहायता से भोजन बनाते हैं। हल्की हवा चलने से पौधो के आस पास विभिन्न गैसों का मूवमेन्ट होता है जो कि पौधो के विकास में सहायक होता है। हवा की गति तथा हवा का दबाव पौधों की विभिन्न क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। हवा की तेज गति से वाष्पन तथा वाष्पोत्सर्जन प्रभावित होता है। हवा के द्वारा ही पौधों की पत्तियों पर डस्ट जमा हो जाती है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पर असर पड़ता है। हवा कीड़े व बीमारियों के वाहक का कार्य भी करती है। अत्यधिक तेज हवा से न केवल फल व फूल झड़ जाते हैं बल्कि पौधों की टहनियां भी टूट जाती हैं तथा कई बार तो पेड़ के पेड़ उखड़ जाते हैं। कई पौधों में परागण हवा द्वारा ही होता है। हवा की दिशा व गति का कृषि क्रियाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। हवा की गति को नियंत्रित करने के लिए ही बगीचों में वायुरोधी पेड़ लगाए जाते हैं।

नमी : नमी या पानी सभी पौधों की मूलभूत आवश्यकता है। पानी के माध्यम से ही पौधे खनिज लवणों तथा पौषक तत्वों का अवशोषण करते हैं। रासायनिक खादों व दवाईयों के इस्तेमाल में भी पानी की आवश्यकता पड़ती है। पानी, तरल, ठोस व जल वाष्प के रूप में हो सकता है। जमीन में नमी का उतार चढ़ाव पौधो की बढ़वार के लिए ठीक नहीं रहता है। अचानक नमी में परिवर्तन आने से फल व फूल गिर सकते हैं तथा फलों का फटना भी हो सकता है। वातावरण में आर्द्रता अधिक होने से कीड़ो तथा बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है तो अत्यधिक कम आर्द्रता से फलन पर प्रभाव पड़ता है।

शुष्क क्षेत्रों के लिए बेर, आंवला, अनार, खजूर, लसोड़ा, फालसा, नीम्बू, पीलू, खेजड़ी, करौन्दा, कैर इत्यादि उपयुक्त पाए गए हैं। इन फल दार पेड़ो की मौसम सम्बंधी आवश्यकताओं का वर्णन दिया गया है।

बेर : यह शुष्क क्षेत्र में उगने वाला एक लाभकारी फल वृक्ष है जो कि विषम परिस्थितियों में भी उगाया जा सकता है। यह ऊष्ण व उपोष्ण जलवायु में अच्छी फलत देता है। लेकिन विपरीत मौसम का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके लिए बीज उगने से लेकर फलों की तोड़ाई तक 25–35°C तापक्रम में अच्छी वृद्धि व उपज देता है। कम या अधिक तापक्रम होने पर बीजों का जमाव, फलों का लगना, फलों की वृद्धि तथा फलों का पकना व गुणवत्ता भी ठीक नहीं रहती है। फूल आते समय यदि अधिक तापक्रम हो जाता है तो समस्त फूल झड़ जाते हैं। यदि अचानक वर्षा हो जाये तो फल बनने की जगह पौधे की वानस्पतिक वृद्धि शुरू हो जाती है। फूल आने के समय व फलों के बनने के समय तेज हवा का प्रकोप हो जाये तो समस्त फूल व फल झड़ जाते हैं। फल बनने के बाद यदि आसमान में बादल छा जाये तो दूसरी बीमारियाँ जैसे छाछिया रोग बेर की फसल को नष्ट कर देता है। फलों के विकास के दौरान मिट्टी में नमी होना अति आवश्यक है। जमीन में नमी के अभाव में या तापक्रम की अधिकता में फल गिर जाते हैं। फल बनने के बाद यदि दिन के समय हवा चल रही हो और रात को अचानक बन्द हो जाये और आसमान साफ हो तो अवश्य ही तुषार या पाला पड़ने की सम्भावना हो जाती है। यह भी एक मौसम का घटक है। जिससे बचाना अति आवश्यक है। इससे बचाव के लिए धुँआ करे तथा खेत में सिचाई करे ताकि आसपास का तापमान बढ़ जाए और पाले से फलों का बचाव हो सके।

आंवला – आंवले में औषधीय गुण होने कारण इसकी मांग दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। यह एक विटामिन सी का खजाना है तथा इससे विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत पदार्थ जैसे आंवला च्यवनप्राश, कैण्डी, मुरब्बा, जैम, अचार इत्यादि बनाये जा सकते हैं आंवले में प्रमुख तीन गुण होते हैं। 1. गुस – पाचन शीलता 2. रूक्ष – शुष्कता एवं 3. शीत – ठण्डक प्रदान करना। आंवले को त्रिदोश हारा भी कहते हैं। यह शरीर के तीनों दोषों वात, पित्त व कफ को शमन करता है।

आंवले की खेती शुष्क व नम दोनों प्रकार की जलवायु में की जा सकती है। यह उपोष्ण जलवायु में अच्छी तरह से पनपता है। परन्तु ऊष्ण जलवायु में अच्छी तरह से फलता है। मार्च–अप्रैल में फूल आने के बाद फल बनना शुरू हो जाते हैं लेकिन दिखायी नहीं देते हैं। अगस्त–सितम्बर में फल वृद्धि करना शुरू कर देते हैं और फलों का विकास तेजी से होता है लेकिन तापक्रम की वृद्धि तथा वायुमण्डल में आर्द्रता कम तथा तेज हवा चलने पर फलों के विकास पर विपरीत असर पड़ता है। फलों के विकास के लिए आसमान साफ होना चाहिए। फलों के विकास पर सूर्य की रोशनी भी भली भांति मिलनी चाहिए क्योंकि प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया होती है। फलों के पकते समय पाला इसके पौधों को नष्ट कर देता है। जब सर्दी अधिक पड़े तो शीत से बचाना चाहिए।

अनार – यह एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है लेकिन उष्ण जलवायु में भली भांति फलता है। जहां पर गर्मी अधिक पड़ती है। वहां पर भी इसकी खेती सम्भव है, लेकिन फल लगने के लिये 25–35°C तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु तापक्रम बढ़ने पर फलों के लगने पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अधिक तापक्रम तथा वायुमण्डल में आर्द्रता कम होने पर इसके फल फटने शुरू हो जाते हैं। जिससे फलों की गुणवत्ता पर विपरीत असर पड़ता है। तेज हवा भी इसके लिए नुकसान दायक होती है। फलों के वृद्धि के समय रोशनी (प्रकाश) भली भांति मिलना चाहिए। सूर्य की सीधी किरणें अगर फलों पर ज्यादा समय तक पड़े तो फलो का ऊपरी भाग काला पड़ जाता है जिससे उसकी गुणवत्ता पर असर पड़ता है।

नीम्बू – यह भी विटामिन सी का खजाना है जो कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक फल है। इसके विभिन्न पदार्थ बनाये जाते हैं। जैसे अचार, जूस इत्यादि। नीम्बू प्रजाति के फल विभिन्न प्रकार की जलवायु में पैदा किये जा सकते हैं। इसकी खेती उष्ण तथा समशीतोष्ण जलवायु में भली भांति की जा सकती है। अधिक आर्द्रता वाले स्थानों पर उत्पन्न किये गये फल अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु के फलों से अधिक चिकने होते हैं। इसके फलों के लिए सामान्य गर्मी व सर्दी होना उत्तम रहता है। तापक्रम का प्रभाव फूलने व फलने पर अधिक पड़ता है। इसके लिए गर्म पाला रहित शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है।

खजूर – यह पश्चिमी राजस्थान के लिए अनुकूल फल वृक्ष है। इसके बारे में कहावत है कि सिर आग में व जड़ पानी में होनी चाहिये। जितनी तेज गर्मी होगी इसके लिए फायदेमन्द है। इसके लिए लम्बे समय तक अधिक गर्मी की आवश्यकता होती है परन्तु फल पकते समय वर्षा व वायुमण्डल में अधिक आर्द्रता नहीं होना चाहिए। लम्बे समय तक बादल छाये रहना भी इसके लिए हानिकारक होता है। इसमें फूल फरवरी के महीने में आने शुरू हो जाते हैं। इस समय 20–25°C से अधिक तापक्रम नहीं होना चाहिए तथा फल पकते समय 25–40°C के बीच तापक्रम होना चाहिए। फलों के वृद्धि के समय सूर्य की रोशनी भली भांति मिलनी चाहिए। खजूर के फलों के पकते समय वर्षा अथवा अधिक आर्द्रता नुकसानदायक होती है। काजरी में किये गये अनुसंधान से पता चलता है कि वातावरण में वर्षा व अधिक आर्द्रता के चलते फलों को पेड़ों पर जुलाई–अगस्त माह तक नहीं रख सकते, इसलिए उन्हें डोका अवस्था में जून के अन्तिम सप्ताह तक तोड़ना ही पड़ता है। अगर इसके पश्चात फलों को पेड़ों पर रखा जाए तो फलों में अत्यधिक शर्करा की वजह से सड़ सकते हैं व उन पर फफूंद का आक्रमण हो सकता है। अधिक नमी व वर्षा के कारण फल गिरते भी हैं।

लसोड़ा – यह भी एक फल वृक्ष है लेकिन इसके फलों का अचार व सब्जी के रूप में प्रयोग होता है। इसका वृक्ष एक कठोरनुमा होता है जो विषम परिस्थितियों में तैयार हो जाता है। लेकिन पैदावार के उद्देश्य से पानी देना अति आवश्यक है। इसके फूलते समय तापक्रम 20–25°C से अधिक होना चाहिए। फल बनते समय अधिक तेज हवा नहीं चाहिए अन्यथा फलों पर प्रतिकूल असर पड़ता है। फल बाजार में मार्च–अप्रैल के महीने में आना शुरू हो जाते हैं।

फालसा – फालसा को सर्दी व गर्मी में पर्याप्त अलगाव की आवश्यकता होती है। ऐसे क्षेत्रों में जहां शीत ऋतु नहीं होती हैं वहां इसकी पत्तियां नहीं झड़ती हैं। जिसके फलस्वरूप शुष्कवस्था नहीं आ पाती है और इस कारण इसमें दो तीन बार फूल आते हैं। जिससे उसकी गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है। फालसा अधिकतम 44°C तक सहन कर सकता है। फलों की बढ़वार के समय अधिक तापमान अच्छा रहता है। फूल आने के वक्त साफ मौसम की आवश्यकता होती है और फलन के समय वर्षा होने से फल लगना प्रभावित हो सकता है। इसको गर्म व सूखा जलवायु जैसा कि पश्चिम राजस्थान में पाया जाता है, अच्छा रहता है।

शुष्क क्षेत्र में मौसमनुसार होने वाले पशुओं के मुख्य रोग एवं उपचार

डॉ. बी.के. माथुर, डॉ. ए.सी. माथुर एवं डॉ. एन.वी. पाटिल

पशुधन मरू क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तम्भ है। पारम्परिक ज्ञान एवं अनुभव के अनुसार यहां पर पशुपालन आधारित कृषि कार्य को ही महत्व दिया जाता है।

मरू क्षेत्र में मुख्यतः वर्षा आधारित कृषि होती है और क्योंकि यहां वर्षा कम, अनियमित होने के कारण खेती की सम्भावनायें बहुत ही कम तथा इससे प्राप्त लाभांश भी साधारणतय कम ही होता है। यहां अकाल आम बात है, केवल फसल खेती पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है। इन परिस्थितियों में पशुधन कृषक के जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत है, इसीलिए पशुपालन मरू ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधारभूत हिस्सा है। सन् 2008 की पशु गणनानुसार राजस्थान के केवल मरू क्षेत्र के 12 जिलों में 290 लाख पशुधन है।

यहां पर पाये जाने वाली पशुओं की प्रजातियों ने इस शुष्क क्षेत्र के अनुरूप स्वयं को ढाल लिया है। इसी गुण के कारण मरूस्थलीय प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखने वाली यहां की पशु नस्ल सर्वोत्तम मानी जाती है।

गाय – थारपारकर, राठी, काकरेज व नागौरी

भेड़ – चोकला, नाली, मारवाड़ी, मगरा, पुगल, सोनाडी व जैसलमेरी

बकरी – मारवाड़ी व परबतसरी

ऊँट – बीकानेरी व जैसलमेरी

पशुपालन के मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त गांवों व शहरों में बहुत लोग पशु द्वारा प्रदत्त उत्पादनों के व्यवसाय में संलग्न हैं। जैसे ऊन, दूध, खाल आधारित व्यवसाय इत्यादि। देश की कुल ऊन उत्पादन का 40 प्रतिशत भाग राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्रों से ही प्राप्त होता है। इसी तरह दुग्ध उत्पादन भी यहां अत्यधिक होता है। यह एक गर्व की बात है कि दुग्ध, मांस एवम् अन्य पशु उत्पादनों में मरू क्षेत्रों का भारतवर्ष में अत्यधिक योगदान है।

वैज्ञानिक दृष्टि से पशुपालन की मुख्य शाखाएं हैं – पशु पोषण, पशु प्रजनन एवं पशु स्वास्थ्य। पशु को स्वस्थ रखने हेतु उन में होने वाली मरू क्षेत्र की विभिन्न बीमारियों के बारे में जानकारी आवश्यक है। पशुओं में विभिन्न प्रकार से होने वाली बीमारियों को मुख्यतः चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) कुपोषण सम्बन्धी बीमारियां –

(प्रोटीन की कमी, मिल्क फीवर, ग्रास टिटैनी, कोबाल्ट की कमी, पाईका, विटामिन-ए की कमी आदि)

रेगिस्तानी क्षेत्रों में होने वाली मुख्य बीमारियां अधिकतर असन्तुलित पोषण या कुपोषण के कारण होती हैं। इनका मुख्य कारण प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, विटामिन ए एवं कुछ विशेष लवणों की कमी है। इन तत्वों की कमी के कारण पशु दिनों-दिन कमजोर होने लगता है तथा बढ़वार रुक जाती है और उसकी हड्डियां मुख्य तौर पर पसलियां दिखाई देने लगती हैं। पशु की थुम्बी कम होने लगती है। पशु अभोज्य पदार्थ जैसे जूता-चप्पल, मिट्टी, मल, कपड़ा, पौलिथीन थैलियां आदि खाने लगता है तथा दाँत किटकिटाने लगता है। पशु का हाजमा प्रायः खराब होने लगता है। कब्जी, आफरा या कभी दस्त लग जाते हैं। पशु के पेट में दर्द रहता है। जिसके कारण वह बैचेन रहता है व पैर पटकता है। इसके अलावा पशु की त्वचा सूखने लगती है व बाल/ऊन झड़ने लगते हैं। उत्पादक क्षमता लगातार कम होने लगती है व दूध जल्द सूख जाता है। पशु की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है तथा पशु लम्बे समय तक गर्मी में

नहीं आता। पशु में गर्भ नहीं ठहरता, उत्तेला (फिराव) खाने लगता है, बच्चा अधूरा गिरा देता है, जर अटक जाती है, ब्याने से पहले अथवा बाद में आर (योनि एवं गर्भाशय का बाहर आना) शरीर से बाहर आने लगती है जिसमें संक्रमण होने पर पशु की मृत्यु तक हो जाती है। पशु की आँखों में पानी आता है, शाम एवं रात को दिखना कम हो सकता है, आँखों पर सफेद फूला भी आ सकता है।

चिकित्सा :

- सूखे चारे को यूरिया उपचारित कर खिलायें जिससे पशु को प्रोटीन एवं शर्करा (ऊर्जा) उपलब्ध हो सके।
- अकाल में विशेष तौर पर सभी पशुओं को लवण विटामिन्स मिश्रण जो कि बाजार में विभिन्न ट्रेड नामों (जैसे न्यूट्रिमिन, ऐग्रिमिन फोर्ट, मिल्कमिन, सप्लीवेट-एम) से उपलब्ध है, निम्न मात्रा खिलाना चाहिए :

दुधारू गाय/भैंस – 25 से 30 ग्राम प्रति दिन

बाखड़ी गाय/भैंस – 10 से 15 ग्राम प्रति दिन

बछड़ी/पाड़ी – 10 से 15 ग्राम प्रति दिन

भेड़/बकरी – 3 से 5 ग्राम प्रति दिन

यह लक्षण मिश्रण अनुपचारित/उपचारित चारे में या बाँटे में या किसी अन्य भोज्य पदार्थ में मिलाकर पशु को प्रति दिन खिलायें।

- रतोंधी/आँख पर फुल्म व चमड़ी सूखी होने पर पशु को विटामिन ए का इन्जेक्शन लगवाना चाहिये। इस हेतु सबसे अच्छा तरीका कि प्रत्येक 2-3 महीने बाद पशु को विटामिन ए का इन्जेक्शन (ट्रेड नाम विटेड, विटा-ए इत्यादि) अवश्य लगवा दें।
- शरीर की ऊर्जा की आवश्यकता पूरी करने हेतु समय-समय पर पशु को रसकट गुड़ या शीरा (मोलासीस) खिलाते रहना चाहिए।

(ब) परजीवी संबंधी बीमारियां – अकाल के समय पशु की शारीरिक शक्ति पहले ही कम होती है ऐसे समय परजीवी पशु के शरीर के ऊपर (बाह्य परजीवी) तथा अन्दर (आंतरिक परजीवी) रहने से वह पशु का खून या/और पचा हुआ भोजन चूसने लगते हैं जिससे पशु और अधिक कमजोर होने लगता है। यह परजीवी पशुओं द्वारा दूषित पानी पीने तथा गंदी जगह बैठने-उठने से हो जाते हैं। अतः अकाल के समय प्रत्येक 3-4 महीने बाद पशु का बाह्य एवं आंतरिक परजीवीनाशक दवा से उपचार करना आवश्यक है।

I. बाह्य परजीवी उपचार : पशु के शरीर पर होने वाली विभिन्न प्रकार के जूं, चिचड़ी, जई आदि कीड़ों को मारने हेतु विभिन्न बाह्य परजीवी नाशक दवाईयां उपलब्ध है। (जैसे – साइपर मेथरिन, ऐक्टोमिन, सिपरोल आदि)। इन दवाईयों को 1 लीटर पानी में 1^{ml} के हिसाब से मिलाकर पशु को शरीर पर फुव्वारे द्वारा छिड़काव किया जाना चाहिये। यह दवायें खेतों में छिड़कने वाली कीटनाशक दवाओं की तरह बहुत जहरीली होती हैं अतः इन्हें प्रयोग में लेते समय निम्न सावधानी रखनी चाहिये –

- (1) छिड़कते समय पशु को छोटा बांधें।
- (2) उसके आँख एवं चेहरे पर दवा न छिड़के।
- (3) छिड़कते समय चारा-पानी पास नहीं होना चाहिये।
- (4) दवा छिड़कते से पहले हाथों में दस्ताने पहने एवं स्वयं के चेहरे को ढके।

- (5) दवा को बच्चों से दूर रखें।
- (6) दवा छिड़कते के बाद अपने हाथ मुँह को साबुन से अच्छी तरह धोयें।
- (7) दवा की खाली शीशी को काम में न लें बल्कि तोड़कर मिट्टी में दबा दें।

दवा का छिड़काव ऐसी जगह विशेषतौर से करना चाहिये जहां यह बाह्य परजीवी अधिक संख्या में रहते हैं जैसे जांघों में, गुदाद्वार के आसपास।

II. आन्तरिक परजीवी उपचार : सामान्य तौर पर एवं अकाल के समय विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग सभी पशुओं के अन्दर विभिन्न प्रकार के कृमि पाये जाते हैं जो कि पशु को सीधे नुकसान पहुँचाते रहते हैं। पशुओं में इस प्रकार के परजीवी होने का मुख्य कारण है तालाब आदि का दूषित पानी।

इन परजीवियों को समय-समय पर आन्तरिक परजीवी नाशक दवाई पिलाकर पशुओं की रक्षा की जा सकती है। यह दवाई (खुराक) साल में कम से कम तीन बार (प्रत्येक चार महीने के अन्तराल पर) पशुओं को पिलाई जानी चाहिये। इन दवाइयों में वर्तमान समय में सबसे असरदार दवा है – फेनबेन्डेजोल एवं ऐलबेन्डेजोल नामक दवा। यह दवायें कई रूप (पाउडर, गोली एवं पिलाने की दवा) एवं नामों से बाजार में उपलब्ध हैं।

खुराक : इन दवाओं की खुराक शरीर के वजन के अनुसार होती है। मोटे तौर पर 2 क्विंटल वजन हेतु डेढ़ ग्राम वाली एक बोलस (बड़ी गोली) दी जाती है। अतः सामान्य तौर पर भैंस को 2 बोलस, छोटी गाय को एक बोलस दिया जाता है। भेड़ एवं बकरीयों हेतु 150 मिलीग्राम की गोलियां अलग आती हैं जो कि 20 किलो वजन हेतु एक गोली दी जाती है। इसी अनुपात में छोटे बड़े सभी पशुओं को एक साथ दवा देनी चाहिये।

(स) किटाणुजनक विमारियाँ – यूं तो सूखे या अकाल के समय विभिन्न प्रकार के किटाणुओं का फैलाव नमी की कमी के कारण कम ही होता है परन्तु जैसा पहले बताया गया है कि अकाल के समय कुपोषण के कारण पशु की प्रतिरोधात्मक शक्ति इतनी कम हो जाती है कि सामान्य तौर पर कम हानिकारक किटाणु भी पशुओं में संक्रमण कर उनमें बीमारी पैदा करने में सक्षम हो जाते हैं। जिससे पशुओं में मृत्यु दर बढ़ जाती है। किटाणुओं से होने वाली अधिकतर बीमारियां संक्रामक होती हैं अर्थात् एक पशु से दूसरे पशु में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सम्पर्क में आने पर फैल जाती है। अकाल के समय होनी कुछ मुख्य संक्रामक बीमारियां निम्न है –

1. संक्रामक दस्त : अकाल के समय अक्सर पशु भूख के कारण सड़ा-गला चारा, दाना एवं अन्य भोज्य पदार्थ खा जाते हैं। इन पदार्थों में क्लोस्ट्रिडियम एवं अन्य जीवाणुओं का संक्रमण होता जिसके कारण पशुओं को दस्त लग जाते हैं एवं मृत्यु हो जाती है। इनके ईलाज हेतु उपयुक्त ऐंटीबायोटिक्स के इंजेक्शन एवं गोलियां उपलब्ध है परन्तु अधिकतर ईलाज मंहगा एवं समय पर नहीं मिल पाता। वैसे असंक्रामक दस्त होने पर पशुओं को साधारण दस्त 'रोक दवायें दी जा सकती है। (जैसे – नेबलोन या डायरोक खुराक : गाय-भैंस 25-30 ग्राम, भेड़-बकरी 5-10 ग्राम सुबह-शाम दो दिन तक)।

बचाव हेतु सभी पशुओं (गाय, भैंस, भेड़, बकरी) को 'मेल्टी कम्पोनेट क्लाससट्रिडियम वेक्सीन' का नाम का टीका लगवा लेना चाहिये। (खुराक : भेड़-बकरी 4-5 मिली, गाय-भैंस 10 मिली. त्वचा के नीचे S/C) यह टीका बाजार में उपलब्ध है।

2. खुराड़ा-मुराड़ा/मुँह-खुरपका (एफ.एम.डी.) : यह बीमारी जुगाली करने वाले पशुओं में होती है। इसका समय अधिकतर सर्दी के मौसम में होता है। परन्तु अन्य मौसम में भी आ सकती है। इस बीमारी में पशु के मुँह में (जीभ, तालु एवं मसूड़ों) छाले हो जाते हैं जिसके कारण बहुत अधिक लार गिरती है। छाले मुँह के साथ-साथ खुरों के बीच की जगह तथा थनों पर भी हो जाते हैं जिसके कारण पशु लंगडाने लगता है तथा दुध निकालने में भी दिक्कत आती है। मुँह में

लार के साथ खून भी आ जाता है। पैरों के घाव में कीड़े भी पड़ सकते हैं तथा कभी-कभी खुर की खोली भी उतर सकती है। यह बीमारी देसी पशुओं में अधिकतर 5-6 दिनों में स्वतः ही ठीक हो जाती है परन्तु विदेशी एवं संकर पशुओं में इसका असर अधिक तीव्र होता है।

बीमारी हो जाने पर मुँह एवं खुर के घावों को लाल दवा के बहुत हल्के घोल (1:10000) से दिन में कई बार धोना चाहिये। बाद में इन घावों पर घी तेल में मिलाकर किटाणुनाशक पाउडर (जैसे - बोरिक पाउडर, सल्फर पाउडर) लगाना चाहिये। पावों में कीड़े पड़ जाने पर उस पर तारपीन का तेल एवं मीठा तेल बराबर की मात्रा (1:1) में मिलाकर रूई के फोये द्वारा लगाना चाहिये।

ईलाज के मुकाबले बीमारी के बचाव का टीकाकरण अधिक लाभकारी रहता है। इसका टीका बाजार में उपलब्ध है जिसे बर्फ या फ्रिज में रखना पड़ता है। यह टीका सितम्बर से दिसम्बर (सर्दी आने से पहले) में लगवा लेना चाहिये।

3. मुरमुरी रोग (Contagious Ecthyma) : यह बीमारी मुख्यतः भेड़ एवं बकरियों में होती है। वास्तव में यह बीमारी प्रत्येक वर्ष इन पशुओं में आती है अर्थात् विशेषतौर पर अकालजनित नहीं है परन्तु अकाल के समय कुपोषण के कारण इस बीमारी से मृत्युदर बढ़ जाती है। यह एक वायरसजनित बीमारी है जिससे पशुओं के होठों पर छाले/दाने हो जाते हैं जो कि बाद में खुरंट के रूप में बदल जाते हैं इसके कारण होठों में सूजन आ जाती है जिससे सांस लेने, चरने एवं चबाने में तकलीफ होती है। खुरंड हटने पर घाव नहीं बनता तथा पशु को आराम आ जाता है। यह दाने कभी-कभी पशु को जीभ, तालु, खुर तथा थनों में भी आ जाती है। अधिकतर पशु 5-6 दिन में ठीक हो जाते हैं परन्तु कमजोरी के कारण अकाल में पशु की मृत्यु हो जाती है।

बीमारी के असर को कम करने हेतु आरम्भ से ही दानों पर कोई किटाणुनाशक दवा (जैसे - नीली दवा या जैनशियन वायलेट 1 प्रतिशत घोल) दिन में दो बार लगाते रहें।

4. पी.पी.आर. : यह भी वाइरस जनित संक्रामक रोग है जो मुख्य तौर पर बकरी एवं भेड़ों में आता है। बकरीयों में इस बीमारी से अधिक नुकसान होता है जिसमें 30-40 प्रतिशत तक मृत्यु दर हो सकती है। इस बीमारी में पशु को तेज बुखार आंखों में पानी आना नाम से पानी आना जोकि बाद में गाढ़ा चिपचिपा हो जाता है। जिससे यह होंठों और नथुनों पर चिपक जाता है। होंठों, मसूड़ों, जीभ एवं मुँह के अन्दर की त्वचा पर छाले तथा घाव हो जाते हैं पशुओं को दस्त लगते हैं।

इस बीमारी से बचाव हेतु टीका उपलब्ध है जिसका असर 3 वर्ष तक रहता है। ईलाज हेतु मुँह के घावों को लाल दवा के घोल से धोवे एवं उन पर घी, तेल में मिलाकर बोरिक पाउडर लगायें। पशु चिकित्सक के सलाह से ऐन्टीबायोटिक एवं अन्य इंजेक्शन लगवायें।

(द) पशुओं में बाँझपन : अकाल के समय पशुओं में प्रोटीन, ऊर्जा, लवण विशेषतौर पर फास्फोरस एवं विटामिन-ए की कमी के कारण प्रजनन क्षमता में कमी आ जाती है जिसके कारण पशु गर्मी में नहीं आता, फिराव खाता है बच्चा गिर जाता है, जर अटक जाती है या फिर बच्चेदानी बाहर निकलने लगती है। पशु के शरीर में आन्तरिक एवं बाहरी परजीवियों के प्रकोप से उपरोक्त शारीरिक कमियां बढ़ जाती हैं जिससे बाँझपन की समस्या अधिक हो जाती है।

अकाल में बाँझपन की समस्या को दूर करने के लिये निम्न उपाय करें -

1. पशु को आन्तरिक एवं बाहरी परजीवी से मुक्त करने हेतु दवा दें।
2. पशु को प्रतिदिन 1 किलो अतिरिक्त संतुलित पशु आहार दें।

3. पशु को प्रतिदिन एक बार 25–30 ग्राम (एक मुट्ठी) लवण मिश्रण खिलायें।
4. पशु को ऊर्जा देने हेतु गुड़ या शीरा चारे या बाटें में मिलाकर समय–समय पर खिलाते रहे।
5. विटामिन–ए के इंजेक्शन या घोल 2–3 दिन तक दें।
6. फास्फोरस के इंजेक्शन 2 से 3 दिन तक दें।

(य) टीकाकरण : जीवाणु जनित मौसमी बीमारियों से बचाव के लिये अति आवश्यक है समय पर टीकाकरण। पशुओं में होने वाले विभिन्न संक्रामक बीमारियों से बचाव हेतु पशुओं का समय पर टीकाकरण कराना बहुत आवश्यक है अन्यथा इनका ईलाज असंभव या बहुत महंगा होता है जिससे पशुधन को बहुत नुकसान होता है। टीकाकरण निम्न प्रकार कराया जा सकता है।

बीमारी का नाम	पशु	टीकाकरण का समय	उपलब्धता
1. गलघोटू (ऐच. ऐस.)	गाया या भैंस	अप्रैल से जून	पशुपालन विभाग
2. लगंड़ा बुखार या गोली वाला रोग (बी.क्यू.)	मुख्यतः गाय (3 वर्ष से कम)	अप्रैल से जून	पशुपालन विभाग
3. खुराड़ा–मुराड़ा/मुंह पका खुर पका (एफ.एम.डी.)	गाय, भैंस एवं जुगालीकरने वाले अन्य सभी पशु	अक्टूबर से दिसम्बर	बाजार में उपलब्ध
4. फड़किया (इ.टी.)	भेड़ एवं बकरी	वर्षा पूर्व	पशुपालन विभाग
5. भेड़ माता (Sheep Pox)	भेड़	अक्टूबर से नवम्बर	पशुपालन विभाग